श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला महाविद्यालय

(दिल्ली विश्वविद्यालय)

हिंदी विभाग

सुगंधिका (ई–पत्रिका)

24 अगस्त 2018, प्रवेशांक

संपादक

डॉ पूनम सिंह

सह संपादक

डॉ विभा नायक

शुभकामना संदेश

मुझे अत्यंत प्रसन्नता है कि महाविद्यालय का हिंदी विभाग इस सत्र से साहित्यिक ई– पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ कर रहा है। डिजिटल दुनिया में उनका यह क़दम हिंदी भाषा तथा साहित्य की छात्राओं के लिए नए आयाम और दिशाओं का आगाज़ करेगा। साहित्य का पढ़ना ही पर्याप्त नहीं होता वरन् साहित्य निर्माण की ओर भी छात्राओं को प्रवृत्त होना चाहिए, इस उद्देश्य की पूर्ति ई–पत्रिका द्वारा होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। सभी विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता की अभिव्यक्ति के लिए यह पत्रिका एक मंच प्रदान करेगी। आज का समय 'तत्काल संचार' का है, जिसमें कलात्मक धैर्य के लिए कम ही स्थान बचता है, युवा वर्ग इस चक्रव्यूह में फंस कर रह जाता है। ई–पत्रिका को मैं ऐसे प्रयास के रूप में एक मील का पत्थर मानती हूं जिसके द्वारा छात्राओं की कल्पना शक्ति विकसित होगी और रचनात्मकता के नए संसार में उन्हें पंख लगाकर उड़ने का अवसर मिलेगा।

संयोजक और संपादक तथा विभाग–प्रभारी को इस महती योजना के लिए साधुवाद तथा शुभकामनाएं।

डॉ साधना शर्मा

प्राचार्या (कार्यवाहक)

संपादक की क़लम से

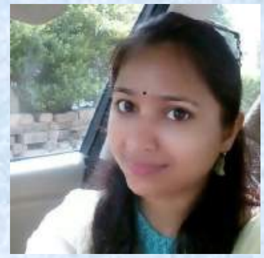

कबीर ने कहा है– घूंघट के पट खोल तोहे पिया मिलेंगे, का अर्थ है कि सत्य पर कोई परदा नहीं पड़ा है। सारे घूंघट स्वयं मनुष्य ने ओढ़ रखे हैं। अहंकार का घूंघट, छद्म ज्ञान का घूंघट, संपदा काघूंघट, जाति–पांति, रंग–भेद का घूंघट। सत्य तो आवरणहीन रहता है। वैज्ञानिक, कलाकार, सच्चे धर्म साधक सभी सत्य के संधान में लगे हैं। इस सत्य के संधान में भावों की बड़ी अहमियत होती है। भावुक व्यक्ति के पास कहने–बताने को बहुत कुछ होता है। जैसे स्त्री अपने हर रिश्ते में चहकती है जो अनकहा भी रह जाए उसे भी ज़ुबान दे सकने की सामर्थ्य प्रकृति ने स्त्री को दी है। इसलिए ई–पत्रिका का नाम सुगंधिका अर्थात् स्त्री रखा गया है।

हिंदी विभाग के सभी साथियों के प्रयास से विभाग एक नई दिशा की ओर क़दम बढ़ाने चला है, विभाग की पहली ई–पत्रिका सुगंधिका के माध्यम से।

यह पत्रिका आपको एक नए संसार में विचरने का मौका देगी। उम्मीद करती हूं कि इन कच्ची–पक्की रचनाओं को आप सराहेंगे। गुरु और शिष्य दोनों ही सत्य को देख पाते हैं। परंतु दोनों की अभिव्यक्ति अलहदा ढंग से होती है। एक जहां परिपक्व है वहीं दूसरा परिपक्वता के पायदान पर क़दम बढ़ा रहा है। कुछ कमियां हुईं तो उसके लिए हम क्षम्य हैं।

सुगंधिका के इस प्रथम अंक में चंद मुद्दों का ज़िक्र है। शेष को बहुत ध्यान से देखेंगे तो खुद ही ढूंढ पाएंगे। बहुत सारी शुभकामनाओं के साथ।

डॉ पूनम सिंह

विभाग प्रभारी

अनुक्रमणिका

विवरण पृष्ठ संख्या

(वरिष्ठ सदस्यों की कलम से)

1 हाशिए पर सिमटती हमारी हिंदी– डॉ नीलम गुप्ता 5

2 कविताएं– डॉ राधिका सिंह 8

3 कविताएं– डॉ आशा जोशी 11

(वर्तमान सदस्यों की क़लम से)

1 भाषा मातृभाषा और साहित्य –डॉ पूनम सिंह 13

2 साहित्यिक स्मृतियां– डॉ शगुन अग्रवाल 19

5 भात (कहानी)– डॉ उर्वशी 23

6 लघुत्तम समापवर्त्य– डॉ प्रेमशंकर 26

7 कुछ नहीं है – डॉ विभा नायक 28

8 तुलसी का एक पद– डॉ कुलभूषण शर्मा 34

(बच्चों की क़लम से)

9 वक्त नहीं है– जन्नत 36

10 कॉलेज की यादें–करुणा 37

11 सामाजिक सरोकार–पूजा 39

12 बेटियां–जन्नत 40

13 प्रेरणा– शिवानी 41

14 मां– शिवानी 42

15 आंखों का पानी–शिवांगी 43

16 तस्वीरों में हिंदी विभाग 45

वरिष्ठ सदस्यों की क़लम से

हाशिए पर सिमटती हमारी हिंदी

डॉ नीलम गुप्ता

भारतेंदु के समय अंग्रेज़ अपनी फूट डालो और राज करो की नीति के अनुसार अल्पसंख्यकों को बढ़ावा देते थे। हिंदी के रूढ़िवादी साहित्यकार आधुनिक हिंदी में गद्य के विकास के प्रति उदासीन थे। मुसलमानों के भारत आने से नयी भाषा उर्दू का जन्म हुआ, ऐसा नहीं है। दो धर्मों के पास आने से कोई नई भाषा जन्म नहीं लेती। मुसलमानों का भारत में प्रवेश आठवीं शताब्दी से ही आरंभ हो गया था। किंतु उर्दू 18 वीं शताब्दी के अंत में ही सामने आई। अरब, ईरान, तुर्की तीनों मुसलमानी देश हैं किंतु तीनों की भााषाएं अलग–अलग ही नहीं तीन भिन्न परिवारों की भी हैं। दिल्ली में शासन करने वाले मुसलमान न ईरानी थे और न ही अरब। हिंदी का उर्दू से विलगाव इसलिए आवश्यक था कि कबीर, तुलसीदास, सूरदास, मीरा, रसखान आदि द्वारा प्रयुक्त देशी शब्दों की परंपरा से अपने आप को जान कर अलग कर लिया था। भारतेंदु ने हिंदी के लिए संघर्ष किया। सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन में उसका व्यवहार सुदृढ़ किया। हिंदी को उसी मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा दी जिस पर बंगला, मराठी, तेलुगु आदि पहले से ही बढ़ रही थीं। भारतेंदु ने जो हिंदी आंदोलन चलाया वह मुसलमानो के लिए भी उपयोगी था न केवल हिंदुओं के लिए। ठीक उसी तरह जैसे बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय और रविंद्रनाथ ठाकुर की बंगला सेवा हिंदू मुसलमान सब के लिए थी। इस हिंदी आंदोलन के परिणाम स्वरूप हिंदी क्षेत्र में एक नयी सांस्कृतिक एवं राजनैतिक चेतना आई।

भारतीय भाषा आंदोलन भारत में हिंदी और भारतीय भाषाओं को उनका उचित स्थान दिलाने के लिए चलाया गया एक आंदोलन है।

संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में अंग्रेज़ी की अनिवार्यता समाप्त की जाए और उसके स्थान पर भारतीय भाषाओं को शामिल किया जाए उच्च न्यायालयों में क्षेत्रीय भाषाओं में सुनवाई हो। और निर्णय भी क्षेत्रीय भाषा में ही दिये जाएं। सर्वोच्च न्यायालय में अंग्रेज़ी में सुनवाई हो और निर्णय भी अंग्रेज़ी के साथ हिंदी में भी दिये जाएं।

पं मदनमोहन मालवीय जी के मन में हिंदी के लिए विशेष आदर भाव था। इनकी प्रेरणा से भारत, हिंदुस्तान और विश्वबंधु जैसे चर्चित पत्रों का प्रकाशन शुरू हुआ। न्यायालयों में हिंदी को स्थान दिलाने का श्रेय मालवीयजी को है। महात्मा गांधी स्वतंत्रता आंदोलन में सजग, साहसी और आदर्श नेता के रूप में सामने आए। गांधीजी ने हिंदी को साधन और साध्य दोनों रूपों में अपनाया था। गांधी सेवा–संघ, चरखा–संघ, हरिजन–सेवक संघर्ष आदि का सारा

कामकाज हिंदी में होता था। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन जी हिंदी साहित्य सम्मेलन के संस्थापकों में से एक थे। टंडनजी की प्रेरणा से हिंदी साहित्य सम्मेलन आज भी हिंदी के प्रचार–प्रसार में लगा हुआ है।

हिंदी भाषियों में काका साहेब कालेलकर का नाम हिंदी के प्रचार–प्रसार में गौरव से लिया जाता हैं उन्होंने कभी अंग्रेज़ी का विरोध नहीं किया पर प्रादेशिक भाषाओं और हिंदुस्तानी के प्रबल हिमायती थे।

यह निर्विवाद है कि काका कालेलकर हिंदुस्तानी के समर्थक थे। सेठ गोविंददास की हिंदी के प्रसार के साथ इसे राजभाषा के प्रतिष्ठित पद पर सुशोभित करवाने में अविस्मरणीय भूमिका रही है।

प्रमुख संस्थाओं का योगदान– भारतवर्ष में स्वाधीनता संग्राम के साथ हिंदी का आंदोलन भी चलाया जा रहा था। भारत धर्म प्रधान देश है। हिंदी प्रचार आंदोलन में साहित्यिक संस्थाओं के साथ धार्मिक–सामाजिक संस्थाओं का विशेष योगदान रहा है। एक ओर सामाजिक और धार्मिक विकृतियों को रोकने का प्रयास शुरू हुआ तो नैतिक मूल्यों को अनुकूल आधार मिला। इस दिशा में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, सनातन धर्म सभा, प्रार्थना सभा, थियोसोफिकल सोसायटी आदि संस्थाओं की भूमिका से समाज में आशा की किरण जगमगाई है। धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया से आंदोलित हुए भारतीय आदर्श और संस्कृति के पुजारी राजाराम मोहन राय ने सं 1828 में कलकत्ता में ब्रह्म समाज की स्थापना की। वे अंग्रेज़ी को एक महत्वपूर्ण भाषा के रूप में सम्मान देते थे, किंतु राष्टीय संदर्भ में हिंदी के प्रबल समर्थक थे। आर्य समाज की स्थापना 1875 ईस्वी में बंबई में स्वामी दयानंद द्वारा समाजोत्थान के लिए की गई थी। आर्य समाज का सत्संग और सम्मेलन हिंदी में ही होता था इसलिए हिंदी प्रसार को सुंदर आधार मिला।

सनातन धर्म सभा के माध्यम से देश के व भिन्न प्रदेशों में शिक्षण संस्थाएं शुरू हुईं। हिंदी को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। उत्तर भारतीय क्षेत्र में इसको आशातीत सफलता मिली। गोस्वामी गणेशदत्त इस सभा के कर्णधार थे। प्रार्थना समाज के सक्रिय नेताओं में न्यायाधीश महादेव रानाडे और आर जी भंडारकर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

थियोसोफिकल सोसायटी के संस्थापक मदाम ब्लावत्स्की और कर्नल आलकोट थे। श्रीमती एनी बेसेंट ने सं 1928 में मद्रास में हुए हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में हिंदी संदर्भ में प्रेरक वक्तव्य दिया था।– मेरा विश्वास है कि हिंदी भारतवर्ष की मुख्य संपर्क भाषा होगी। मेरा विचार है कि भारतवर्ष की शिक्षा में हिंदी अनिवार्य होनी चाहिए।

साहित्यिक संस्थाएं– भारतेंदु मंडल के सदस्यों के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए हिंदी साहित्य की विविध विधाओं पर महत्वपूर्ण कृतियों की रचना की। पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी पर व्याख्यान देते हुए कहा था– निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति कौ मूल।

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग–सम्मेलन द्वारा हिंदी प्रचार–प्रसार और हिंदी विकास के लिए नियम बनाए गए। इनमें प्रमुख थे– राष्ट्रभाषा हिंदी और राष्ट्रलिपि देवनागरी का प्रचार, देवनागरी में छपाई की समुचित व्यवस्था, हिंदी साहित्य की विविध विधाओं का विकास, हिंदी विद्वानों और साहित्यकारों का सम्मान और हिंदी प्रचार–प्रसार हेतु हिंदी की उच्च परीक्षाओं का आयोजन। इनमें से कुछ परीक्षाएं केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा मान्य हैं।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा हिंदी साहित्य सम्मेलन का 25 वां अधिवेशन सन् 1936 में नागपुर में हुआ। सम्मेलन के अध्यक्ष डॉ राजेंद्र प्रसाद थे। इस समिति का मुख्य उद्देश्य हिंदी प्रचार था। समिति ने जुलाई 1943 से राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्रभारती मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। इस समिति के देश से बाहर लंका, स्याम, सुमात्रा, मॉरीशस इंग्लैंड आदि देशों में केंद्र हैं।

तीन बड़ी भाषाएं तमिल, अवेस्ता और संस्कृत परस्पर एक–दूसरे से पुष्ट होती थीं। बृहत् भारत के स्तर पर परस्पर संपर्क लोकभाषाओं में चलता था। विदेशी आक्रमणों के कारण लोकभाषाओं का विकास स्वाभाविक रूप से से होने के साथ–साथ हिंदी का संपर्क भाषा के रूप में जन्म हुआ। हिंदी भाषा की उत्पत्ति के कारण स्वदेशीकरण से हिंदी भाषा को सर्व सम्मति से स्वीकृति मिली। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के समझौते ने हिंदी को हाशिए की ओर धकेलना शुरू कर दिया। व्यापार में अंग्रेज़ी भाषा ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होती थी। हिंदी के राजभाषा बनने से हिंदी भाषा को एक और चोट लगी।

स्वाधीनता के पश्चात् शिक्षा जगत में भारतीय भाषाओं की तुलना में विदेशी भाषाओं– फ्रेंच, जापानी, रशियन, चीनी, जर्मन आदि भाषाओं की ओर भारतीयों के रुझान नेे भी हिंदी को हाशिए की ओर धकेलना आरंभ कर दिया।

जिस देश को अपनी भाषा और साहित्य के गौरव
का अनुभव नहीं, वह उन्नत नहीं हो सकता।

डॉ राजेंद्र प्रसाद

(डॉ राधिका सिंह की कविताएं)

1 सहचरी

मैं वह शकुंतला नहीं जो

अभिज्ञान के अभाव में

लांछनों को सहते, दुखों को झेलते

गिरि–कंदरा के अंधकार में

अपने अभाग्य का लेखा–जोखा करते

जीने को इसलिए विवश थी

क्योंकि उसकी कोख में भरतवंश का सूर्य पल रहा था

मैं वह सीता भी नहीं जो अपराध के अभाव में

मर्यादा पुरुषोत्तम पति के मान के लिए

अग्निपरीक्षा देकर भी अपमान सहती

और जनाक्रोश झेलती रही।

तिरस्कृता की विवशता थी कि

सूर्यवंशी के कुलदीपक को

प्रज्ज्वलित रखने के लिए

उसे स्नेह–तरल बनना ही था।

मैं द्रौपदी भी नहीं जो

एक तुच्छ संपत्ति की भांति

पहले जीती गई, फिर बांटी गई

और फिर दांव पर लगा दी गई

अवशोषित, अपमानित और लांछित द्रौपदी भी

जीने के लिए बाध्य थी क्योंकि

वैर–शोध नही महाभारत का साध्य था।

मैं! मैं तो वह सावित्री हूं जो

अनुकृति नहीं, अनुचरी और प्रतीक नहीं सहचरी है।

जीना उसकी विवशता नहीं, सार्थकता है।

सत्यवान का जीवनदीप जलाए रखने के लिए कृतसंकल्पिता है।

2

रंग जीवन के

मैंने जीवन के हर रंग को सराहा

काले की कालिमा और लाल की लालिमाएं

न भयभीत रही न ही लालायित हुई

हां हरियाली को सहेजने की भरपूर कोशिश की, पर

मटमैले बंजर को भी नहीं भूली नहीं

नीले आकाश की ऊंचाइयों को छूने के बदले

सागर की अतल गहराइयों में

डूबने और उतराने में ही

जीवन की सार्थकता मानी

आशा–निराशा, सफलता–असफलता के

झूले में झूलते हुए

पहली छोड़ दूसरी को ही पाया।

फिर भी

नीरस, उदास, बोझिल होते मन को

सरस, शीतल, चंचल लहरों से दुलराया

और जीवन के हर रंग को अपनाया।

3 मन के राग

चंचल लहरों सी लहराती, झरनों के संग बहती हूं

लय पर बूंदों के नर्तन, हवा से बातें करती हूं

कोमल किसलय की छुअन, सिहरन भरती है तन में

कलियों की मादकता ले, मन झूम–झूकम उठता पल में

सुन कोयल के मधुर गीत, झंकृत होते मन के तार

मधु गंध भरे मादक फूलों से, सज उठते हैं सुंदर हार

सावन के उड़ते बादल जब छा जाते वन–उपवन में

धरती पर फैली हरियाली, सुख भर जाती नयनों में

रस–रूप मधुर नव भाव लिए मैं गीत तुम्हारे गाती हूं

यह चंदन–सुरभित हृदय लिये अब पास तुम्हारे आती हूं

जीवन का सुख सार तुम्हीं प्रिय मेरा कुछ भी कहीं नहीं

जो कुछ पाया तुम्हें सौंप कर छिप जाऊं बस यहीं कहीं।

प्रेम

चलो प्रेम करके देखें

उस बच्चे से जो

कुहरे भरे सर्द दिन में

तार–तार कुर्ता पहने, सड़क पर

मारपीट कर

भीख मांगने खड़ा कर दिया गया है

प्रेम करके देखें उस लड़की से

जिसे उसकी कच्ची उम्र में

कांच के गिलास सा

कोई घर का सगा तोड़ गया है

उसकी आंखों में आज भी दहशत है, वहशत की।

वह यौवन की दहलीज पर कदम

रखने से डरने लगी हैप्रेम करें उस बूढ़े दंपति से जिसका

बेटा सीमापार दूर जा बसा है

बस सिक्कों की खनक भेजता है बूढ़े सिक्कों को बिछाएं या ओढ़ें

चलो इन तीनों से कुछ पल

थोड़ी देर प्रेम से बतिया कर देखें, प्रेम के लिए सब खोया जा सकता है।

2 प्रेम

प्रेम की कोई उम्र नहीं होती

तउम्र आपकी अंगुली पकड़ आपको

सबसे ऊंचे शिखर तक

चढ़ा सकता है प्रेम।

प्रेम की कोई जात नहीं होती

दूर नदी के उपेक्षित घाट से दिखने वाले

बांसवन से लेकर

ऊंची अटारी की ओर तक

निर्बाध हवा की तरह

आवाजाही कर सकता है प्रेम

वह न ब्राह्मण है न क्षत्रिय

न शूद्र है न वैश्य

दुनिया की दीवारें तोड़

अपनी बात कहने का साहस रखता है प्रेम।

वर्तमान सदस्यों की क़लम से

भाषा, मातृभाषा और साहित्य

डॉ.पूनम सिंह

अरस्तु ने मनुष्य की दो परिभाषाएँ दी हैं। प्रथम– 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है' और द्वितीय 'मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है'। इसके साथ यह भी सत्य है कि मनुष्य एक भाषिक प्राणी भी है। इस संसार में कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं होगा जिसे भाषा की ज़रूरत ना पड़ती हो, वह चाहे विद्वान हो, चाहे मूर्ख, चाहे संत हो, चाहे बदमाश सब को भाषा की आवश्यकता पड़ती है। वाणी से वंचित लोगों की भी अपनी भाषा होती है .मनुष्य खुद को और दुनिया को भी भाषा के माध्यम से ही जानता है। छोटे बच्चे को माँ सिखाती है– यह आग है हाथ मत डालो, हाथ जल जायेगा, यह पानी है इसमें हाथ डालो। बच्चे को बचपन में माँ ही शब्दों का सही उच्चारण करना सिखाती है। माँ ही बच्चे को संबंधों के विषय में बताती है कि यह तुम्हारे पिता हैं, यह तुम्हारा भाई है,यह तुम्हारे चाचा हैं और साथ ही कोई ऐसा व्यक्ति आ गया जिससे उस घर का मेल–जोल नहीं है तो माँ ही बताती हैं कि यह कौन है? यानि यह हुआ मनुष्य का आत्मबोध।

पर इस आत्मबोध या अपने बारे में ज्ञान के साथ ही संसार का ज्ञान भी है। यह पेड़ हैं, यह पौधें हैं, यह चिड़िया हैं और यह जानवर हैं। यह भी भाषा के माध्यम से ही चाहे माँ बताये चाहे पिता बताये,इसलिए मैंने कहा कि "मनुष्य एक भाषिक प्राणी भी है। भाषा से ही परिवार बनता है और भाषा से ही समाज बनता है। जब दो या दो से अधिक लोग आपस में बात नहीं करेंगें तब तक समाज नहीं बन सकता। आपस में क्रियाकलापों का आदान–प्रदान नहीं करेंगे तो ना तो भाषा से परिवार बनेगें और ना ही भाषा से समाज बनेगा.

भाषा से ही मनुष्य अतीत का ज्ञान प्राप्त करता है,चाहे वह भाषा लिखित हो या मौखिक. 'कबीर' को हमने सुना नहीं है और न ही देखा है।पर माध्यम भाषा ही है जिसके ज़रिए कबीर की वाणी, उनके सन्देश और उनके विचार हम तक पहुँचे। उसी तरह गुरु नानक देव, सूरदास, वाल्मीकि, वेदव्यास तथा कालिदास की रचनाओं का भी माध्यम भाषा ही है जिसके द्वारा हम अपने पुरातन भारतीय समाज, संस्कृति और सभ्यता को जान और समझ पाए हैं।

यहां तक यह तो स्पष्ट है कि भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम तो है लेकिन यह केवल और केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं है। अभिव्यक्ति तो बाद में होती है सबसे पहले मनुष्य भाषा में ही सोचता है। आप जिस किसी चीज़ के बारे में सोचना शुरू करेंगें, तो धीरे–धीरे कुछ शब्द,

कुछ वाक्य आपके ध्यान में आएंगे। यही सोचना होता है। किसी से कुछ भी बोलने से पहले मन में एकालाप की प्रक्रिया चल चुकी होती है, इसके बाद उसको लिखना, बोलना हो तो अभिव्यक्ति करेंगे। इसलिए मनुष्य भाषा में ही सोचता है और भाषा में ही उसकी अभिव्यक्ति करता है। ″कार्ल मार्क्स ने एक जगह लिखा है कि भाषा के बिना विचार का अस्तित्व नहीं होता यानि गंभीर से गंभीर दार्शनिक विचार भी भाषा में ही व्यक्त होता है″।

थोड़ा और ध्यान दीजिए आप में से जो गांव से संबंध रखते हैं उन्हें अनुभव होगा कि तिक्त और मधुर भाव भी भाषा के माध्यम से ही प्रस्तुत होते हैं। भाव मधुर हों तो प्रेम, कविता और भावों में तिक्तता हो तो भाषा में अपशब्द का रूप भी धारण कर लेते हैं।इसी प्रकार गाँव के लोग आपस में एक–दूसरे से जिस भाषा में बात करते हैं अगर आपको याद पड़ जाए तो गाली–गलौच का अर्थ समझ में आ जाएगा। पर वह भी भाषा है इसलिए भाषा की व्यापकता को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता कि मनुष्य एक भाषिक प्राणी है भाषा के रूप भी अलग–अलग हैं।

अब भाषा से मैं थोड़ा हिंदी की ओर आना चाहती हूँ, यद्यपि मेरी यह बात भारत की किसी भी भाषा पर लागू होती है. हिंदी, पंजाबी, उड़िया, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगू सभी भाषाओं पर. हिंदी के प्रसंग में भाषा के तीन रूप है – मातृभाषा , राष्ट्रभाषा और राजभाषा और चौथा कहे तो संपर्क भाषा।

भले ही लोग समाज और संस्कृति के प्रसंग में औरतों को ज्यादा महत्व नहीं देते। सारे पुरुष समझते हैं कि संस्कृति उन्हीं की ठेकेदारी है। जबकि सच्चाई यह है कि स्त्रियाँ ही संस्कृति रचती हैं। सारे तीज–त्यौहार, व्रत आदि का आदान–प्रदान पीढ़ी दर पीढ़ी घर की स्त्रियों द्वारा ही संचालित होता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि हम इस बात को भूल जाते हैं कि जो माँ की भाषा है वही मातृभाषा (उवजीमत जवदहनम)है, उसको संसार भर में मातृभाषा ही कहा जाता है। पितृभाषा दुनिया में कहीं कोई नहीं है और यह बात स्त्रिओं के बुनियादी महत्व की भाषा के प्रसंग में बहुत महत्वपूर्ण है।

लेकिन यह भी सच्चाई है कि भारत में एक ही मातृभाषा नहीं है। किसी की मातृभाषा हिंदी, बंगाली, गुजराती,तमिल, तेलुगू, कन्नड़, पंजाबी है तो किसी की उर्दू भी है। तो आप फिर यह बताएं कि सिर्फ हिंदी में विकास कैसे होगा। अलग–अलग भाषा–भाषी अपनी–अपनी भाषा में ही विकास प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन भारत की विडंबना है कि हमारे देश के लगभग हर माँ–बाप की धारणा बन चुकी है कि यदि बच्चों को पढाई में परचम लहराना है तो बचपन से ही अंग्रेज़ी का दामन थाम लेना चाहिये। उन्हें विश्वास है कि अंग्रेज़ी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे ज्यादा स्मार्ट और

आत्मविश्वासी होते हैं। हम सब दूसरे देश की भाषा पर इतने निर्भर हैं कि हिंदी में अपनी मौलिकता को खोते जा रहें हैं।

इस लिहाज़ से देखें तो हम आज भी पिछड़े हुए हैं। चिंता की बात है कि पिछले चार वर्षों से हम लगातार नीचे खिसक रहें हैं। अंग्रेज,चीनी,जापानी आदि सभी इसलिए विकास कर रहें हैं क्योंकि सभी ने किसी दूसरे देश की भाषा को ना अपनाकर अपने देश की मातृभाषा को अपनाया है। यदि हम भी चाहते हैं कि भारत विकासशील देशों की श्रेणी से निकलकर विकसित देशों की श्रेणी में अपना स्थान बनाये तो जिस भाषा में हम सोचते और सीखते हैं,उसी भाषा में हम विकास कर सकते हैं। दुनिया में सबसे ज़्यादा 'इनोवेशन' यहूदियों ने किये हैं। आज भी यहूदियों की पहली भाषा 'हिब्रू' है। अंग्रेज़ी वहां तीसरी भाषा है। कोरिया,जापान,चीन,फ्रांस,मलेशिया,हांगकांग, जर्मनी जैसे देश रोज़ नए–नए आइडिया पैदा कर रहे हैं और कामयाबी के शिखर पर हैं। इनमें से किसी भी देश की मातृभाषा अंग्रेज़ी नहीं है, सभी अपनी मातृभाषा में कार्य करते हैं।

हम अंग्रेज़ी में पढ़–लिखकर जिन मल्टीनेशनल कंपनियों में काम करने का सपना देखते हैं, वे सारी कंपनियां कोरिया,जापान या फ्रांस जैसे छोटे देशों की हैं, जिनकी आबादी हमारे एक राज्य से भी कम है। दुनिया के सबसे क्रिएटिव और इनोवेटिव देशों की पड़ताल करने पर पता चलता है कि आज शीर्ष पर वही देश हैं,जिनकी मातृभाषा और कर्मभाषा एक है। अगर भारत के 130 करोड़ लोग अपनी रचनात्मकता को वाणी देने में समर्थ हो जाएं तो हम पूरी दुनिया में ज्यादा ताकतवर देश बनकर उभर सकते हैं, वरना दूसरों की भाषा की नक़ल और दूसरों की बनी चीज़ों के उपभोक्ता बने रहेंगे।

'राहुल सांकृत्यायन' का कहना है कि मातृभाषा को सही रूप में, खांटी रूप में केवल औरतें बोलती हैं, और वह भी गाँव की औरतें। उसका कारण है कि पुरुष जो बाज़ार जाते हैं, शहर जाते हैं, कभी–कभी आवश्यकतानुसार विभिन्न ऑफिसों में जाते हैं वे चार तरह की भाषा सुनकर आते हैं। जब बोलेंगें तो उनकी भाषा में चार तरह की भाषा की मिलावट होगी। मेरा अपना व्यक्तिगत अनुभव है गाँव के लोग कुछ समय शहर में रहकर जब गाँव लौटते हैं तो वे खड़ी बोली हिंदी में बोलते हैं, तो गाँव के बड़े–बूढे लोग कहते हैं अंग्रेज़ी बोलते हो'। शुद्ध खड़ी बोली हिंदी ग्रामीणों के लिए अंग्रेजी ही है। गांव का व्यक्ति हो या अनपढ़ उसके लिए 'सॉरी' या 'थैंक यू' बोलना ज़्यादा आसान होगा बजाय 'माफ़ कीजिए' या धन्यवाद. यहाँ तक कि परिवार में यदि किसी को अंग्रेज़ी नहीं आती तब भी शादी का कार्ड अंग्रेज़ी में छपवाते हैं।

आजकल जो हिंदी चल रही है जिसे मैं सरकारी हिंदी कहती हूँ वह भी डराती है। लोगों को आप चले जाइये पोस्ट ऑफिस में या बैंक में चेक की जो हिंदी है वह क्या मजाल की

पी–एच.डी. लोगों की समझ में आ जाये। हम जोधपुर शहर परिवार सहित घूमने गए। हमने देखा कि सड़क पर एक जगह लिखा है 'उष्ट्र अनुसन्धान केद्र'। पहले तो उष्ट्र मेरी समझ में नहीं आया। फिर ध्यान से देखा तो उसके एक ओर ऊंट का रेखाचित्र भी बना हुआ था, तब समझ में आया कि उष्ट्र यानि ऊंट। अब इस हिंदी को राजस्थान के गाँव का आम आदमी जिसका ऊंट से सुबह–शाम, रात–दिन का नाता है क्या समझेगा कि उष्ट्र क्या बला है। वह ऊंट को तो जानता है पर उष्ट्र को नहीं जानता। बहुत सारी समस्याएँ उष्ट्रवादी हिंदी से हो रही हैं। इसलिए जो हिंदी आप बोलें वही लिखें।हिंदी को राष्ट्रभाषा,राजभाषा या संपर्क कहने से हम अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो जाते,अपितु हिंदी को हमें सरल बनाना होगा और राजभाषा की जो क्लिष्ट शब्दावली आज तक फाइलों में चल रही है, उसके आसान विकल्प देने होंगे।

साहित्य की बात करें तो एक दौर था हिंदी में छायावाद का। उस दौर में लोग समझते थे कि मेरा लिखा हुआ आसानी से समझ में आ जाए तो मैं विद्वान् कैसा? इसलिए कठिन से कठिन हिंदी लिखने का प्रयास किया जाता था। मेरा मानना है बात महत्वपूर्ण होनी चाहिए। बात महत्वपूर्ण न हो और भाषा का जंजाल बहुत हो, संस्कृत के शब्द बहुत अधिक हों तो वह उचित नहीं है। उदाहरण के रूप में कहा जा सकता है कि जैसे गाँव में, औरतें भी अन्न कूटने में,धान व गेहूं कूटने में दिलचस्पी रखती हैं पर भूसा कूटने में किसी की दिलचस्पी नहीं होती। यह कठिन हिंदी लोगों से भूसा कुटवाने की कोशिश है।

यह जो मातृभाषाएँ हैं उनका हिंदी के क्षेत्र में अपार महत्व है। आपने पढ़ा होगा भक्तिकाल के बारे में। क्या कभी ध्यान दिया कि भक्तिकाल की सारी कविता मतलब तमिलनाडु के आंदाल से लेकर आसाम के शंकरदेव तक और महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर से लेकर हिंदी क्षेत्र तक सभी भक्त कवियों की कविता उनकी मातृभाषा में लिखी हुई हैं? हिंदी क्षेत्र में मातृभाषाएँ अनेक हैं। विद्यापति तीन भाषाओँ में साहित्य लिखते थे संस्कृत, अपभ्रंश और मैथिली। परन्तु मैथिली भाषा में ही मैथिली के 'विद्यापति' महाकवि हैं। वह संस्कृत के महाकवि नहीं हैं। वह अपभ्रंश के भी महाकवि नहीं हैं। अवधी की बात करें तो अवधी के एकमात्र महाकवि हैं जायसी। तुलसीदास दो भाषाओं में कविता लिखते थे – अवधी और ब्रजभाषा में। ब्रजभाषा के 'महाकवि' तुलसीदास नहीं हैं। ब्रजभाषा के 'महाकवि' तो सूरदास हैं। तुलसीदास अवधी के महाकवि हैं। थोड़ा और आगे जाएं तो मीराबाई हैं। वह राजस्थानी की महाकवयित्री हैं। एक और विशेषता मीराबाई की है। हिंदी के केवल दो कवि हैं, जिनका अपने क्षेत्र के बाहर भी बहुत सम्मान है। मीराबाई का जितना सम्मान राजस्थान में है उतना ही गुजरात में भी है। उसी तरह से विद्यापति का जितना सम्मान मिथिला क्षेत्र में है उतना ही बंगाल में भी है। इसलिए मातृभाषा के महत्व को समझना ज़रूरी है।

नागार्जुन ने भारतेंदु पर एक लम्बी कविता लिखी है। उसमें एक जगह उन्होंने लिखा है कि 'हिंदी की है असली रीढ़ गंवारू बोली,यह भावना तुम्हीं ने हममें घोली'। भारतेंदु सहित भारतेंदु युग के जो लेखक थे वे सभी लोक भाषाओं से जुड़े हुए थे। तत्कालीन समय के बुद्धिजीवी स्थानीय स्तर पर काम करते थे। स्वयं राहुल सांकृत्यायन अनेक स्तर पर स्थानीय थे। उन्होंने 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तक खड़ी बोली हिंदी और भोजपुरी मिलाकर लिखी है। राहुल जी ने भोजपुरी में आठ नाटक लिखें हैं। वे आज़मगढ़ के रहने वाले भोजपुरी भाषी व्यक्ति थे .

साहित्य क्यों पढ़ें? साहित्य पढ़ने से दो लाभ होते हैं। एक लाभ तो यह है कि साहित्य बहुत सारी अनबूझ चीज़ों के बारे में हमें ज्ञान देता है। उदाहरण के तौर पर भारत के किसानों का खासतौर से उत्तर भारत के किसानों की ज़िन्दगी का जितना जीवंत ज्ञान प्रेमचंद को पढ़कर होता है वैसा मोटे–मोटे समाजशास्त्र के ग्रंथ पढ़कर नहीं होता. ये साहित्य का 'ज्ञानात्मक मूल्य' है।

साहित्य का एक 'भावात्मक मूल्य' भी होता है। प्रारम्भ से ही साहित्य 'भाव केन्द्रित' था। भाव का अर्थ है प्रेम, करुणा, क्रोध, दयालुता, उदारता आदि। इससे दो लाभ एक साथ होते हैं एक तो मनुष्य सामाजिक बनता है दूसरा वह संवेदनशील बनता है। प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' के होरी की कथा जब आप पढ़ते हैं तो उपन्यास ख़त्म करते–करते आपका मन होरी के दुःख से हिल जाता है 'यह अनुभव भी साझेदारी है'। यही इंसानियत भी है इन्सान की, इसलिए साहित्य से संवेदना का विस्तार भी होता है। आजकल पूरे विश्व में और अपने देश में भी एक भारी समस्या है –बूढों की समस्या। कुछ लोग उनकी उपेक्षा करते है लेकिन ज़्यादातर लोग अपने बड़े–बूढों का ध्यान रखते हैं। यह शिक्षा भी मिलती है। हमारे साहित्य से मैं प्रेमचंद की कहानी 'बूढी काकी' का नाम लेना चाहूंगी। आप में से बहुत से लोगों ने 'बूढी काकी' कहानी पढ़ी होगी। बूढी काकी कहानी ध्यान से पढ़ने के बाद कोई अपने घर की बड़ी–बूढी औरतों की उपेक्षा नहीं कर सकता।

साहित्य से व्यवहार कुशलता भी आती है। रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है– रीतिकाल की कविता जनता की भावना के अनुसार नहीं लिखी गई अपितु सामंतों की भावना के अनुसार लिखी गई। रीतिकाल की कविता पढ़कर आपको जनसामान्य और सामंती समाज का भेद भी पता चल जाता है। एक और बात पर ध्यान दीजिए –भाषा के सन्दर्भ में। साहित्य से भाषा का ज्ञान भी विकसित होता है। चार कवि चार तरह की हिंदी भाषा लिखते हैं। जैसी कठिन हिंदी भाषा अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' लिखते थे उसके ठीक विपरीत 'मैथिलीशरण गुप्त' लिखते थे। जैसी भाषा 'अज्ञेय' लिखते थे उसके ठीक विपरीत 'नागार्जुन' लिखते थे। भाषा के जो विभिन्न रूप और पक्ष है उसका ज्ञान तब तक नहीं होगा जब तक आप कविता न पढ़ें,

कहानी न पढ़ें ,साहित्य न पढ़ें। इसलिए साहित्य पढने से भाषा का ज्ञान भी बढ़ता है और भाषा की क्षमता भी बढ़ती है।

अपनी हिंदी

अपनी हिंदी एक छोटी या बड़ी

इंद्रधनुषी बिंदी है।

माथे पर लगकर यह

सौभाग्य चिह्न बन जाती है

हाथों में रोटी का ज़रिया–

अपनी हिंदी एक छोटी या बड़ी

इंद्रधनुषी बिंदी है।

साहित्यिक स्मृतियां

डॉ शगुन अग्रवाल

हाल ही में एक के बाद एक तीन कवियों– चंद्रकांत देवताले, कुंवर नारायण और केदारनाथ सिंह के निधन के साथ कवियों की वह पीढ़ी विदा हो गई जिनकी कविता जीवन और जगत के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्पंदनों को सहेजती, उनसे बोलती–बतियाती पाठक को भी रस–संवाद में शामिल कर लेती है। जटिल अनुभवों से भरी सरल और भीतर तक रससिक्त और आश्वस्त करतीं कविताएं। ये तीनों ही कवि बहुतों के प्रिय और अपने समय के बहुत लोकप्रिय कवि थे। अतः इनके विषय में ज़्यादा कुछ न लिखकर मैं इनकी कविताएं जो मुझे बहुत पसंद हैं, आपके साथ साझा करना चाहूंगी।

1

चंद्रकांत देवताले की कविता

मां के लिए कविता नहीं लिख सकता

मां के लिए संभव नहीं होगी मुझसे कविता

अमर चिउंटियों का एक दस्ता मेरे मस्तिष्क में रेंगता रहता है

मां वहां हर रोज़ चुटकी–दो–चुटकी आटा डाल देती है

मैं जब भी सोचना शुरू करता हूं

यह किस तरह होता होगा

घट्टी पीसने की आवाज़ मुझे घेरने लगती है

और मैं बैठे–बैठे दूसरी दुनिया में उंघने लगता हूं

जब कोई भी मां छिलके उतार कर

चने, मूंगफली या मटर के दाने नन्हीं हथेलियों पर रख देती है

तब मेरे हाथ अपनी जगह पर थरथराने लगते हैं

मां ने हर चीज़ के छिलके उतारे मेरे लिए

देह, आत्मा, आग और पानी तक के छिलके उतारे मेरे लिए

और मुझे कभी भूखा नहीं सोने दिया

मैंने धरती पर कविता लिखी है

चंद्रमा को गिटार में बदला है

समुद्र को शेर की तरह आकाश के पिंजरे में खड़ा कर दिया

सूरज पर कभी भी कविता लिख दूंगा

मां पर नहीं लिख सकता।

2

कुंवर नारायण की कविता

बात सीधी थी पर

बात सीधी थी पर एक बार

भाषा के चक्कर में

ज़रा टेढ़ी फंस गई

उसे पाने की कोशिश में

भाषा को उल्टा–पलटा

तोड़ा मरोड़ा, घुमाया फिराया

कि बात या तो बने या फिर भाषा से बाहर आए

लेकिन इससे भाषा के साथ–साथ

बात और भी पेचीदा होती चली गई

सारी मुश्किल को धैय से समझे बिना

मैं पेंच को खोलने के बजाय

उसे बेतरह कसता चला जा रहा था

क्योंकि इस करतब पर मुझे

साफ सुनाई दे रही थी

तमाशबीनों की शाबाशी और वाह–वाह

आख़िरकार वही हुआ जिसका मुझे डर था

और ज़बर्दस्ती से बात की चूड़ी मर गई

और वह भाषा मे बेकार घूमने लगी

हार कर मैंने उसे कील की तरह

उसी जगह ठोंक दिया

बाहर से ठीक–ठाक

पर अंदर से न तो उसमें कसाव था न ताक़त

बात ने जो एक शरारती बच्चे की तरह

मुझसे खेल रही थी

मुझे पसीना पोंछते देखकर पूछा

क्या तुमने भाषा को सहूलियत से बरतना कभी नहीं सीखा?

3

केदारनाथ सिंह की कविता

1 हाथ

उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए मैंने सोचा

दुनिया को

हाथ की तरह गर्म और सुंदर होना चाहिए

2 जाना

मैं जा रही हूं– उसने कहा

जाओ– मैंने उत्तर दिया

यह जानते हुए कि जाना

हिंदी की सबसे ख़ौफनाक क्रिया है।

3 कपास के फूल

वह जो आपकी कमीज़ है

किसी खेत में खिला

एक कपास का फूल है

भात

डॉ उर्वशी

माँ भात दो ना । गरम भात । मीठा भात ।

चार दिन की भूखी बिटिया और कह भी क्या सकती थी अपनी माँ से। नाम की ही संतोषी है। पर भूखे पेट संतोष करे भी तो कैसे। ज्यों चार दिन की स्कूल में छुट्टियाँ न होती तो उसे भूखे थोड़ी रहना पड़ता। वहाँ उसे मिलता पेट–भर खाना, दोस्त भी मिलते, मास्टर जी भी । यही तो छोटी सी दुनिया है संतोषी की। बाल–मन के सुनहरे स्वपनों की रंग–रंगीली दुनियाँ, जो इन बच्चों को विपन्नता में भी प्रसन्नता प्रदान करती है । पर अब चार–पाँच दिन बीत गए हैं । बेचारी बच्ची सब्र करें भी तो कैसे ? मिट्टी के खिलौनों से खेलने की उम्र में ग्यारह वर्षीय संतोषी मिट्टी के लौंदों को चाट अपना जी भरती और ऊपर से पानी पी अपनी क्षुधा शांत करने का प्रयास करती। पर खाली पेट पानी जिगर पर चोट करता और संतोषी "ओह माँ !" बोल पेट पकड़ जमीन पर लोट जाती ।

कोयली गीला कपड़ा कस के पेट पर बाँधती है। "ऐ संतोषी क्या हुआ?" कोयली जानती है कि बेटी भूख से तड़प रही है। संतोषी की आँखें और आँसू कोयली से कुछ छिपा न था। कोयली बेटी के सिर पर हाथ फेरती है। संतोषी के शब्द खो जाते हैं। वह जानती है घर में अनाज का एक दाना भी न बचा था। और रुगरा, जंगली डंठल, साग–भाजी, महुआ तो एक अरसे से घर में न आए थे।करीब छः महीने से अधिक हुए कोयली को राशन की दुकान पर चक्कर लगाते–लगाते। पर दुकानदार उनको राशन देने को तैयार नहीं है। कहता है कि "आधार कार्ड लाओ, तब मिलेगा सस्ता चावल और बाकि सामान।" कोयली कहती है "मालिक मुझ गरीब को तो सस्ते का ही सहारा है।" कोयली हाथ–पैर जोड़ती है। "हुजूर, सरकारी कागज का मुझे क्या ज्ञान, आप ही कुछ देखो।" दुकानदार दंभ से कहता है "इसमें देखना दिखाना क्या है ? तुम लोगों का ठेका लिया है मैंने।" जो गाँठ में पैसा हो तो पूरे पैसे दे और ले जा राशन।" "दे दूँगा, अलग से निकाल के।" गुरुन ने अपनी नजर घुमाते हुए कहा। गुरुन के शब्द कोयली का सीना छलनी कर गए। गुरुन ये सब कहता भी क्यों न पूरे गाँव केवल उसी की एक सरकारी राशन की दुकान है। जो बाबूओं–आला अफसरों की जेबें ठंडी करके उसे मिली थी। कोयली अपमान का घूट पीकर रह जाती है। एक सस्ता राशन ही था, जो महंगाई के दौर गरीब को साँस लेने भर की गुंजाइश देता है। वरना किशना की कमाई ही कितनी है, उस पर खाने वाले तीन।"सुनो, आज हो सके तो लकड़ियाँ बीनते हुए साहूकार से कुछ पैसा ले आना।" कोयली ने मिन्नत भरी आवाज में बाबूजी से कहा। आज चार–पाँच दिन बीत गए है। जो बच्चे के मुँह में एक भी दाना गया हो । अगर किसी को कुछ हो गया तो?

कह के कोयली रो पड़ी। कोयली की बात सुन किशना का मन भी कच्चा हो जाता है। पर साहूकार एक पैसा देने को तैयार नहीं है। उसका बस चले तो बेगार के बदले एक पैसा भी न दे। बीते वर्षों में संतोषी के पिता पर इतना तो कर्जा हो गया है कि खुद को बेच कर भी पूरा नहीं कर पाएगा। उस पर पूरे सिमरेगा में ऐसा कौन है जो उसे पैसा देने तो तैयार होगा। ये हालत सिर्फ संतोषी के बाबूजी की ही थोड़ी है। बल्कि सिमरेगा के कई परिवारों की हकीकत है। वरना कुछ न कुछ हल जरूर निकालते किशना। लेकिन अब साहूकार ही पूरे परिवार की आखिरी उम्मीद थी। इसी आस में संतोषी के बाबूजी साहूकार से मिलने निकल पड़ते हैं। संतोषी पीछे से बाबू का गमछा पकड़ लेती है । बाबू थोड़ा भात लाओगे ना ! इस बार संतोषी के आवाज में थरथराहट और पैनापन ज़्यादा है। बाबा ! बाबा ! लाओगे ना भात ! बाबू बोलो ना बाबू ! लाओगे ना भात ! कहते क्यों नहीं। संतोषी गला रुँध के घुटा जा रहा है, और एक कै।

किशना संतोषी को एक नजर भर भी न देख पाए और गीली–नमी कीचड़ सनी आँख छुपा के बाहर निकल गए। पर बाबू जी के कानों में अब तक संतोषी की आवाज गूँज रही है। जो बार–बार उनसे भात माँग रही है। बाबू जी का गला भी रुँध जाता है। घर की कच्ची सड़क से दूर एक चाय का ढाबा है। जहाँ कुछ बाहरी–बाबू, आने–जाने वाले चाय पीते हैं। ढाबे वाले ने रेडियो भी लगाया है। जो अक्सर ही तेज आवाज में शोर करता है। कभी किशना भी यहाँ गाहे–बगाहे गीत सुनता था। पर जीवन की दौड़–धूप में सब भुला बैठा। ढाबे की भीड़ देख किशना खुद को व्यवस्थित करते हैं। खुद को थोड़ा संभालते हैं और धीमे कदमों से आगे बढ़ता है, ढाबे पर बैठे लोग चाय की चुस्की ले रहें है । किशना कनकी आँख से लोगों को देखते हैं और निगल जाते हैं सारा रस जो गरम चाय को देख के अनायास ही मुँह में भर आता है और आगे बढ़ जाते हैं।घर में बच्चों की हालत देख कोयली भी परेशान है। संतोषी की हालत खराब पर खराब होती जा रही है । उसका शरीर अकड़ता जा रहा है, माँ से वही जिद माँ भात दो ना। भात।

किशना दोपहर बाद तक साहूकार के पास पहुँचते हैं और थोड़ा पैसा माँगते हैं। साहूकार किशना का मुँह देखते ही भड़कता है। "क्यों बे किशना आज क्यों आया है?" "मालिक थोड़ा पैसा।" "पैसा?" "कैसा पैसा? कौन सा पैसा।" "तुझसे कहा नहीं था। जब तक पिछला न चुकाएगा, एक नया पैसा न दूँगा। किशना अपने भूख से बिलखते परिवार की दुहाई देता है। पर किशना का कोई भी तर्क साहूकार के आगे काम नहीं करता। संतोषी के बाबू जी विवश है या तो साहूकार का हिसाब चुकता करे या फिर अपनी संतान को भूख से तड़पने दे। बाबू जी के कानों में अब तक संतोषी के कहे शब्द घूम रहें हैं। बाबा ! बाबा ! लाओगे ना भात ! बाबू बोलो ना बाबू ! लाओगे ना भात ! कहते क्यों नहीं। इतनी विवशता बाबू ने पहले कभी

महसूस नहीं की। अगर एक पैसा भी होता तो जहर खरीद कर खा लेता। पर गरीब के लिए तो गरीबी ही धीमा जहर है। जो खुद किशना, कोयली और उसकी संतान को पी लेना चाहता है।बाबूजी के चेहरे हताशा की रेखाएँ खींच आई हैं। परिस्थितियों ने इतनी बेरहम चप्पल कभी बाबूजी के मुँह पर नहीं लगाई थी। बाबू जी विवश है वापस घर जाने को। क्यों न वह एक बार फिर गाँव के दुकानदार से ही गुहार लगाए, शायद उसका दिल पिघल जाए। बाबू घर की ओर बढ़ते हैं। एक बार फिर वही रास्ता, वहीढाबा और वही रेडियो का शोर। इस बार बाबूजी दुबारा खुद को व्यवस्थित करते हैं और धीमे कदमों से बढ़ते है। इस बार उनकी नजर लोगों पर है, और कानों में रेडियो को आवाज । शायद समाचार का समय है। पर आज समाचारों में गरीब, मजलूम और वंचित वर्ग की बात कहाँ ? बाबूजी समाचार ध्यान से सुनते हैं। समाचार वक्ता बता रहा है कि इस साल 4 नवंबर 2017 को खिचड़ी को भारतीय ग्लोबल फूड के रूप में घोषित किया जाएगा और सिमरेगा से बहुत दूर कही आठ सौ किलो खिचड़ी बन रही है। जिसे मशहूर शैफ बना रहे हैं। इस पहल द्वारा खिचड़ी को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुंचाया जाएगा। बाबूजी के मन में फिर गरम खिचड़ी का चित्र बनता है और अनायास ही मुँह रस से भर जाता है। जिसे बाबूजी निगल जाते हैं। बाबू जी के कदम दुकानदार की ओर बढ़ रहें हैं। उधर संतोषी की हालत बदतर होती जा रही है, उसकी साँस धौकनी–सी चल रही है और जबान पर केवल वही शब्द भात। भात। कोयली का रो–रोकर बुरा हाल है। सब बस बाबू जी की राह देख रहें हैं। बाबू का मन एक बार अनायास ही दुकानदार की तरफ न मुड़ घर की तरफ मुड़ गया। जहाँ केवल मातम पसरा है–कोयली की चीखें और औरतों का सामूहिक रुदन। संतोषी के हाथ ठंडे हैं। वाणी में ठहराव नाम–मात्र का। संतोषी आँख मुँदने से पहले आखिरी साँस में फिर माँ से कहती है–भात। इस बार संतोषी का स्वर धीमा, ठंडा, अस्पष्ट और शांत।

माला बिखर गई तो क्या है, खुद ही हल हो गई समस्या
आंसू गर नीलाम हुए तो, समझो पूरी हुई तपस्या
रूठे दिवस मनाने वालों, फटी कमीज़ सिलाने वालों
कुछ दीपों के बुझ जाने से आंगन नहीं मरा करता है..........

लघुत्तम समापवर्त्य

डॉ प्रेम शंकर पांडेय

हरखू आज उदास था लेकिन आज इस उदासी में भी उसे यह फैसला लेने में कोई दिक़्क़त नहीं हुई कि अब उसे यहाँ नहीं रहना है। चार साल की हाड़ तोड़ मेहनत के बाद भी उसे बहुत कुछ सहना पड़ रहा था। सो मन पक्का किया और निकल आया। वह कब जंगल पहुंच गया पता भी नहीं चला। जंगल में यह बात जंगल की आग की तरह फैल गयी। जिसे देखो वही मुँह से मुँह सटाये फुसफुसा रहा था। जवानों ने मुँह फेर लिया, हरखू जो कल तक तन कर चला करता था, लेकिन बड़े बुजुर्गों को चिंता हुई। आख़िर समाज के ना जाने कितने ही सदस्य शहर में थे, काम कर रहे थे। हरखू तो उन सब में सबसे ज्यादा खुशनसीब था फिर क्या हुआ? अगले ही दिन सुबह सुबह ही सभा बुलाई गई। हरखू को भी बुलाया गया। हरखू से पूछा गया कि क्या बात हुई उदास क्यों है अचानक शहर छोड़ जंगल कैसे आना हुआ? हरखू चुप। सब चुप। चुप्पी के बीच हरखू रुआँसा होते हुए बोला कि अब इंसानों का जुल्म सहा नहीं जाता। फ़िर उसने अपनी और अपने जैसों की दुःख भरी कथा कह सुनायी। अब सब उदास थे। शहर जाने और अच्छी जिंदगी की आस अचानक धुंधला गयी थी। सब फिर चुप। इस बार चुप्पी थोड़ी लंबी रही। लंबी होती जा रही चुप्पी के बीच अचानक कहीं से ज़ोरदार आवाज़ आयी दृ आख़िर इंसानों में ऐसा क्या है कि हम उनके ग़ुलाम बन जाते हैं उनका हुकुम बजाते हैं बोझ उठाते हैं? सबने देखा गबदू की आवाज थी और चेहरा लाल हो रखा था। अपने समाज में आज तक किसी ने किसी का चेहरा लाल नहीं देखा था। सब फिर चुप। फिर रेंगती हुई मुश्किल से सुनी जा सकने वाली आवाज आई दृ 'उनके पास ईश्वर है'। सबने देखा इस बार समाज के सबसे बुजुर्ग जाम्बू की आवाज थी। ईश्वर ईश्वर.... चारों तरफ़ इस पहली बार सुने गए शब्द को सब दुहराने लगे। ये क्या है, कौन है, करताक्या है, हमारे पास क्यों नहीं है? जाम्बू की ओर सबने फिर से देखा। जाम्बू चुप। सब देखते रहे तो जाम्बू ने कहा उसे और कुछ नहीं पता बस उसने देखा है कि इंसानों को जब कोई तकलीफ़ होती है तो सब उसी के पास दौड़ते हुए जाते हैं। वे उसे किसी ना किसी घर में छुपा कर रखते हैं। और भी नामों से बुलाते हैं लेकिन काम एक ही लेते हैं। वही उन्हें बताता है कि कब क्या करना है? इतना सुनना था कि सब उदास। फिर तो हम कभी इंसानों से जीत नहीं पाएँगे कभी उनकी बराबरी नहीं कर पाएँगे। तभी गबदू फिर बोला 'हम भी अपना ईश्वर बनाएंगे'। इस बार किसी ने ध्यान नहीं दिया। सब मुँह लटकाए चुप। लेकिन जाम्बू बोला 'अगर ऐसा हो पाता तो हम भी इंसानों की बराबरी कर सकते हैं, आज़ाद हो सकते हैं'। सब जाम्बू की तरफ देखने लगे 'क्या ऐसा मुमकिन है?' 'हाँ क्यों नहीं? कोशिश तो कर ही सकते हैं'। जाम्बू और मुखिया बदलू ने एक साथ कहा। फिर क्या था समाज के चुनिंदा तेज़तर्रार कुछ को ईश्वर के

बारे में जानकारी जुटाने के लिए शहर भेजा गया। कारीगरों को तैयार रहने के लिए कह दिया गया। तय रहा जाम्बू कि देखरेख में ईश्वर बनाया जाएगा। कुछ दिनों के बाद जुटी हुई जानकारी के आधार पर कारीगर काम में जुट गए। रात दिन कई दिनों तक गुफ़ा के भीतर काम चलता रहा। कारीगर बाहर आते फ़िर भीतर जाते। जाम्बू और कारीगरों की लंबी लंबी बैठकें होती। फिर एक दिन सूचना आयी कि ईश्वर तैयार कर लिया गया है। कल सुबह सुबह सब मैदान में एकत्रित हों, अनावरण होगा। पूरा समाज अबाल वृद्ध सब सज धजकर मैदान में जुट गए। सबकी आँखें नम थीं और चेहरे पर खुशी। मैदान में एक बड़ी–सी प्रतिमा कपड़े से ढँक कर रखी गयी थी। उन्होंने कभी इतनी बड़ी प्रतिमा नहीं देखी थी। समय आ गया और कपड़े को हटाया गया। कपड़े के हटते ही सब दंग, सब चुप। किसी को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। सभी गुस्से में थे और उससे भी ज्यादा निराश। सब अपने अपने घर लौटने लगे। इसबार आँखों में आँसू थे। कारीगरों ने यह क्या कर दिया उनकी ही प्रतिमा बना दी। ईश्वर उनके जैसा कैसे हो सकता है? कारीगरों से जरूर कोई गलती हो गयी है या ख़बर जुटाने वालों से। जाम्बू भी निराश थे एक पेड़ के नीचे खड़े। गुफ़ा के अंधेरे में तो उन्हें कुछ सूझा ही नहीं, बस जुटाई गई जानकारी को आकार देते चले गए। आज किसी भी गधे के घर खाना नहीं बना था, घास वैसे ही पड़ा था। बस बच्चे उसी मैदान में घास चर रहे थे बेख़बर।

ख़्वाब दिल है न आंखें न सांसें कि जो

रेज़ा–रेज़ा हुये तो बिखर जाएंगे

जिस्म की मौत से ये भी मर जाएंगे

ख़्वाब मरते नहीं

ख़्वाब तो रौशनी हैं, हवा हैं, नवा हैं,

जो काले पहाड़ों से रुकते नहीं,

जुल्म के दोज़खों से भी फुंकते नहीं

रौशनी और हवा और नवा के अलम

मकतलों में पहुंचकर भी झुकते नहीं

ख़्वाब मरते नहीं

ख़्वाब तो हर्फ हैं, ख्वाब तो नूर हैं

ख्वाब सुकरात हैं, ख्वाब मंसूर हैं

ख्वाब मरते नहीं, ख्वाब मरते नहीं

कुछ नहीं है

डॉ विभा नायक

घुंघराले बाल, खुशनुमा प्यारी हीरे सी चमकदार आंखें और आंखों में झलकती एक अल्हड़ मासूमियत।

दीदी में आपके साथ मेट्रो में चलूंगा और फिर हम लोग वहां से चिड़ियाघर चलेंगे। कितने सारे जानवर होते हैं न वहां पर! कितना मज़ा आएगा न। उसकी बात सुनकर मैंने कहा कि हां वो तो ठीक है पर मैंने सुना है कि जबसे चिड़ियाघर वालों को पता चला है कि तुम दिल्ली आए हो, उन्होंने तुम्हारे लिए भी एक पिंजरा बनवा के रख लिया है इसलिए कहीं ऐसा न हो कि वो तुम्हें पकड़कर पिंजरे में डाल दें! फिर क्या होगा?

मेरी बात सुनकर अंशुल खिलखिलाकर हंस पड़ा और बोला दीदी आप भी न! मुझे क्यों पकड़ेंगे मैं कोई जानवर लगता हूं क्या?

अंशुल की बात सुनकर मैंने बनावटी गंभीरता से कहा कि मुझे तो तुम कुछ कुछ इंसान जैसे लगते हो पर शायद उन्हें नहीं लगते होगे तभी तो उन्होंने तुम्हारे लिए पिंजरा बनवाया है।

हां दीदी। पर उन्हें भी नहीं लगूंगा। मेरी कोई पूंछ थोडे ही है।

उसकी बात सुनकर मुझे हंसी आ गई। मैंने कहा कि बस यही अंतर है तुममें और चिड़ियाघर के जानवरों में! वैरी गुड! फिर तो उन्होंने बिल्कुल सही किया। मैं सोच रहीं हूं कि मैं खुद ही तुम्हें चिड़ियाघर छोड़ आऊं। नही ंतो बेकार में चिड़ियाघर वाले परेशान होंगे।

अपना यूं मज़ाक बनते देख अंशुल बोला–

दीदीईईईई अच्छा सुनो न, सीरियस होके सुनो

मैंने सिर हिलाते हुए कहा– अच्छा चलो बताओ।

अंशुल अपनी छोटी–छोटी उंगलियों पर गिनाते हुए मुझे बता रहा था कि हमें मेट्रो में घूमना है, कुतुबमीनार में घूमना है और हां लालकिले में भी घूमना है। और हां चिड़ियाघर में भी घूमना है आपके साथ।

और फिर अपनी शरारती आंखें नचाते हुए बोला– चिड़ियाघर में अगर उन्होंने मुझे बंद कर दिया तो आप भी तो मेरे साथ होंगीईईईई तब आएगा मज़ा। अपनी दोनों शेर के साथ बैठकर डिनर किया करेंगे।

अंशुल की बात सुनकर मैंने मुंह सिकोड़ते हुए कहा उंह वो तो नॉन वैजेटेरियन होता है।

हां ये तो मैंने सोचा ही नहीं था। चलो अपन अकेले ही खा लेंगे। अंशुल ने मस्ती के अंदाज़ में सिर हिलाते हुए कहा।

मैंने भी उसी के अंदाज़ में सिर हिलाते हुए कहा कि हां ये ठीक है। चलो और बताओ? और क्या–क्या मज़े करने हैं हमें?

औररररररर बस इतना ही काफी है। मुझे घर जाकर पढ़ाई भी तो करनी है। दीदी मैं न जबसे यहां आया हूं तब से मेरी पढ़ाई का बहुत नुकसान हुआ है। फोर्थ क्लास में मैं फर्स्ट आया था पर यहां आने के चक्कर में मेरे दो पेपर छूट गए। अब कंपार्टमेंट आ जाएगी। दोनों हाथ अपने गाल पर टिकाए अंशुल अचानक से बहुत उदास हो गया था।

मैंने उसके घुंघराले बालों में उंगलिया घुमाते हुए कहा– यार तुम तो बड़े समझदार हो। अभी फिफ्थ क्लास में हो और पढ़ाई की इतनी टेंशन! अगर मैं तुम्हारी जगह होती तो आज पता नहीं कहां होती!

मेरी बात सुनकर अंशुल ने उत्सुक्ता से अपना सिर उठाया और मेरी आंखों में झांककर कहा– कैसे?

मैंने भी मज़े लेते हुए कहा– छोड़ो न अंशुल तुमने किसी को बता दिया तो और भी दिक्कत हो जाएगी। सब हंसेंगे सुनकर।

दीदी बताओ न प्लीज़।

अबकी मैंने गंभीर होते हुए कहा– ओके चलो बताती हूं। पर किसी को बताना मत। बहुत ही गंभीर क़िस्म की बात है।

अंशुल ने मुझे आश्वासन दिया कि दीदी पक्का। मैं किसी को कुछ नहीं कहने वाला।

मैंने बताना शुरू किया। तो सुनो जब न मैं आठवीं क्लास में थी न तो मेरे मिड डे टर्म एग्ज़ाम चल रहे थे। मैंने डेटशीट देखी नहीं थी ध्यान से। इसलिए जिस दिन हिंदी का एग्ज़ाम था मैं ये सोचकर सोती रहीं कि आज तो छुट्टी है। अगले दिन जब पेपर देने पहुंची तो पता चला कि हिंदी का पेपर तो कल ही हो गया और आज तो गणित का पेपर है।

क्या????????दीदी आप सच कह रही हो? फिर क्या हुआ, जब पापा को पता पड़ा तो?

कुछ नहीं पापा ने बस थोड़ी पीठ थपथपाई थी मेरी।

अंशुल खिलखिलाकर हंस पड़ा—दीदी पीठ नहीं थपथपाई होगी पिटाई की होगी।

मैंने कहा कि जो भी है पीठ पर ही हुआ था तो मैं तो यही कहूंगी कि पीठ थपथपाई थी।

ख़ैर मोरल ऑफ द स्टोरी ये है कि पेपर छूटने से कुछ नहीं होता। जो इंटेलिजेंट होता है वह इंटेलिजेंट ही रहता है। आगे सब कवर हो जाता है। आया समझ में———मैंने दोनों हाथों से उसके कान खींचते हुए कहा। ह

हां दीदी मैं न सब कवर लूंगा। खूब पढ़ाई करूंगा। देख लेना । अंशुल ने मस्ती ें अपना सिर हिलाते हुए कहां

उसका उत्साह उसकी शीशे सी चमकीली आखों में ऐसे झलक रहा था जैसे सुबह के मासूम सूरज की हल्की किरणीली धूप उसकी आंखों में उतर आई हो।

मैं जैसे एक पल को लिए खो गई थी। अचानक उसने मेरी नाक को पकड़कर कहा अरे दीदी कहां खो गईं आप?

मैंने भी उसका कान खींचते हुए कहा—नॉटी ब्वॉय और हम दोनों ही हंस पड़े।

उस दिन के बाद क़रीब एक हफ्ते तक मैं उससे मिलने नहीं जा सकी। उससे मिलने का मन तो बहुत था पर कई कारणों से उससे मिलना हो न सका एक ज़बर्दस्त विरोधाभासी सी स्थिति से गुज़र रही थी उस समय मैं। एक ओर कॉलेज की पढ़ाई तो दूसरी ओर उससे मिलने की आतुरता। उसके साथ कुछ वक्त गुज़ारने का लालच और इसके साथ ही एक अजीब सा दर्द या शायद दर्द क़िस्म की कोई चीज़ जो बहुत तक़लीफ देती थी। जब एम्स का वो दृश्य मेरी आंखों की पुतलियों से फिसलकर मस्तिष्क तक फैल जाता था। वो दमघोंटू माहौल। अस्पताल के बाहर और भीतर ऐसा लगता था जैसे कराहती हुई पूरी एक दुनिया सिमट आई हो आस—पास। बिस्तरों पर पड़े मरीज़। मरीज़ों के थके—हारे से रिश्तेदार। सफेद कोट और गले में आला लटकाए डॉक्टरों की आवाजाही। और ———और इन सबके बीच मौसी—मौसाजी और अंशुल।

अस्पताल के एक बिस्तर पर अंशुल। ब्लड कैंसर की आख़िरी स्टेज में अंशुल। अपनी बीमारी में भी हंसता—मुस्कुराता अंशुल।

ठीक एक हफ्ते बाद मैं उससे मिली। पर इस थोड़े से समय में ही वो और भी कमज़ोर हो गया था। आंखों के नीचे काले घेरे मुझे अवाक् कर रहे थे। पर सब नॉर्मल है। यही तो दिखाना है मुझे। इतना तो मैं कर ही सकती हूं। अगर इतना भी नहीं कर सकती तो शायद ज़िंदगी में कुछ भी नहीं कर सकती। मैंने यही सोचा था उस वक्त।

मुझे देखते ही उसके मुरझाए चेहरे पर चमक आ गई। आंखें हीरों सी चमक उठीं। वो चहककर बोला– दीदीईईईईई आप आ गईं। मैं कबसे आपका इंतज़ार कर रहा था। अंशुल एकदम मुझसे लिपट गया।

मैंने उसे चॉकलेट थमाते हुए कहा कि अंशुल मैं तुम्हें क्या बताऊं बड़ी गड़बड़ हो गई है। मेरे कॉलेज के सर को पता चल गया है कि मैं स्कूल में पेपर देना भूल गई थी तो अब वो बहुत स्ट्रिक्ट हो गए हैं। कहते हैं कि स्कूल का पेपर छोड़ दिया तो छोड़ दिया पर कॉलेज का पेपर छोड़ा तो तुम्हारी ख़ैर नहीं। मैंने मुंह बनाते हुए कहा।

सच्ची दीदी?

और नही ंतो क्या?

ओ दीदी यह तो बड़ी समस्या हो गई। पर दीदी सर को कैसे पता चल गया?

कहीं आपके स्कूल वाले सर ने तो नहीं बताया?

क्या पता? ख़ैर छोड़ो। आज तो आ गई हूं न तो आज हम दिन भर खूब मस्ती करेंगे।

हां ठीक है। पर आप आज पूरा दिन यहां रुकोगी न?

हां भाई पक्का। मैंने उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा।

दीदी मैं न यहां बहुत बोर हो जाता हूं। मुझे यहां अच्छा नहीं लगता। अचानक से अंशुल बहुत ही थकी थकी सी आवाज़ में बात कर रहा था। मुझे नहीं समझ आ रहा था कि उसकी बात का क्या जवाब दूं। मैंने उसे समझाते हुए कहा कि बहुत जल्दी अंशुल तुम यहां से बाहर चलोगे और हम खूब मस्ती करेंगे।

नहीं दीदी। आप झूठ बोल रही हो। मुझे ये डॉक्टर बिल्कुल अच्छे नहीं लगते। ये बहुत गंदे हैं। पता है दीदी जब वो मेरी कमर में छेद करते हैं न तो मुझे बहुत दर्द होता है। तीन बार कर चुके हैं वो मेरी कमर में छेद और जब मैं रोता हूं तो कहते हैं कि अभी तो और भी करेंगे। जब तक तुम्हारा बोनमैरो नहीं निकलता तब तक करेंगे।

दीदी ये बोनमैरो क्या होता है? मैं अवाक् सी उसकी बातें सुन रहीं थी। उसे भी अपना जवाब जानने की इच्छा नहीं थी वो तो बस कहता जा रहा था। दीदी अब वो ड्रिल वाला ऑप्रेशन फिर से होगा। अचानक उसकी आंखों में चमक आ गई और वह बोला दीदी पर एक बात कहूं। अब न मुझे दर्द नहीं होता क्योंकि मैं अब बहुत तेज़ चिल्लाता हूं। चिल्लाने से दर्द बहुत कम हो जाता है। है न दीदी?

मुझे समझ नहीं आ रहा था कि क्या कहूं? शब्दों की ऐसी कमी और भावों को छिपाने की ऐसी कोशिश मैंने पहले कभी नहीं की थी। लग तो ये रहा था कि बाहर जाकर चीखूं। ऐसी सुनसान जगह पर चली जाऊं जहां कोई न हो। मुझे लग रहा था कि मैं दुनिया की सबसे नकारी लड़की हूं। ज़िंदगी की चाह में एक छोटा सा बच्चा मेरी आंखों के सामने दर्द और तकलीफ़ से मर रहा है, और मैं उसके सामने गप्पे हांक रही हूं। क्या वो यह सब समझता नहीं होगा? उफ्फ–––

अंशुल तो अपनी बात कहे जा रहा था।– दीदी मुझे अच्छा नहीं लगता। पता है पापा डॉक्टरों के पैरों में पड़े रो रहे थे और कह रहे थे कि डॉक्टर साब मेरे इकलौते अंशुल को बचा लो और डॉक्टर कह रहे थे ये नहीं बचेगा।

दीदी मैं नहीं बचूंगा क्या? वैसे दीदी मुझे हुआ क्या है? जो भी हो दीदी मैं यहां नहीं रहना चाहता। यहां के डॉक्टर बहुत बुरे हैं। ये डॉक्टर मुझे कुछ नहीं करने देगें। मुझे अभी पेपर भी देने हैं। बड़े पापा से मिलने जाना है। और दीदी मेट्रो, कुतुबमीनार और चिड़ियाघर भी तो देखना है न आपके साथ––––दीदी आप सुन रही हो न?

वो बोलता जा रहा था। कहे जा रहा था अपनी बात और मैं भी पूरे ध्यान से उसकी बात सुनने का नाटक कर रही थी। ध्यान तो बस इसी ओर था कि आंख की पुतलियों के पीछे छिपा आंसुओं का सैलाब कहीं पलकों से नीचे न उतर आए। फिर भी मैंने पूरे विश्वास से कहा कि अंशुल तुम बहुत जल्दी ठीक हो जाओगे और पता है जिस डॉक्टर ने तुमसे और मौसाजी के साथ बदतमीज़ी की थी उसे न बड़े डॉक्टर ने बहुत बुरी तरह से डांटा। अब वो कभी ऐसे बात नहीं करेगा। तुम देखना। बस तुम जल्दी से ठीक हो जाओ फिर हम पिकनिक पर चलेंगे और खूब सारे गोल–गप्पे खाएंगे।

अंशुल भी जैसे पुरानी बातें भूल गया और बोला– हां दीदी हम खूब सारी मस्ती करेंगे।

मैंने कहां हां पर वो तो बाद की बात है फिलहाल तो हम चिप्स खा सकते हैं।

चिप्स? कहां हैं चिप्स?

आंखें बंद करो शायद मिल जाएं।

अंशुल ने अपनी आंखें बंद कर लीं और मैंने अपने बैग से चिप्स के पैकिट निकालकर उसकी गोद में रख दिये ।अंशुल एक बार फिर खुशी से उछल पड़ा। उस दिन भी हमने खूब मस्ती की ।अंशुल के साथ मैं वहां के गार्डन एरिया में भी गई। ढेर सारे खट्टे–मीठे पलों के साथ

वो दिन भी बीत गया। पर दिन अकेला नहीं बीता। उसके साथ बीती बहुत कुछ मैं भी और बहुत कुछ अंशुल भी।

फिर एक लंबा अंतराल——————

मैं मां से कहती रही कि मुझे अंशुल से मिलने जाना है पर मेरी मां पता नहीं क्यों मुझे मना कर रही थीं। मैं बार—बार कह रही थी कि मुझे उससे मिलने जाना है वो मुझे मिस कर रहा होगा, मैंने उससे प्रोमिस किया था। पर मां का हर बार यह जवाब होता कि अब वो ठीक है, तुम उसकी चिंता मत करो। बाद में मिल लेना। मैं और तुम्हारे पापा जा रहे हैं न उससे मिलने। तुम अपनी पढ़ाई करो। मुझे लगा कि मां इतनी रुखाई से क्यों बात कर रही हैं। पर यह सुनकर सुकून सा भी मिला कि वो अब ठीक है।

पर दो दिन बाद न जाने क्या हुआ मुझे। मैं क्लास में थी। सर के सामने की बैंच पर। अचानक से मुझे रोना आ गया इतना कि क्या कहूं? मैं रोए जा रही थी। सब पूछ रहे थे कि क्या हुआ अचानक से क्यों रो पड़ी? पर मैं खुद ही नहीं जानती थी तो किसी को भी क्या जवाब देती। ख़ैर——

दो दिन बाद मैंने मां को भी रोते देखा। वो मुझसे अपने आंसू छिपा रहीं थीं क्योंकि वो मुझे नहीं बताना चाहती थीं कि अंशुल अब जा चुका है।

उसी ड्रिल के दर्द से हारकर जिसे वो चिल्लाकर कम कर दिया करता था। पर उस दिन दर्द जीत गया और अंशुल हार गया। ठीक दो दिन पहले ही। ठीक उसी समय जिस समय मेरी आंखों से आंसू निकले थे।

विधि का कैसा विधान! जिन आंसुओं को मैं समझ नहीं पा रही थी। वो बेवजह नहीं थे। इस दुनिया में शायद कुछ भी बेवजह नहीं होता। अंशुल अपने हिस्से के आंसू लेकर विदा हो चुका था। शायद मेरी आंखों में उमड़े आंसुओं के साथ वो यह कहने आया था कि दीदी तुम नहीं आईं न मुझसे मिलने?

मस्तिष्क में शून्यता चिल्ला रही थी कि क्यों ज़िंदगी से भरपूर ज़िंदगी मौत के आगे हार जाती है। क्यों इस मौत को मासूम ज़िंदगियों पर दया नहीं आती? क्यों ज़िंदगी में कुछ भी ट्रांसफेरेबल नहीं होता। अगर होता तो मैं अपनी ज़िंदगी उसे दे देती। पर नहीं यह सब फिज़ूल की बातें हैं। ऐसा कुछ भी नहीं होता और अक्सर जैसा हम चाहते हैं वैसा तो कुछ भी नहीं होता। मुझे लग रहा था कि मैं भी कुछ—कुछ खत्म से हो गई हूं। लग रहा था कहीं भी कुछ भी नहीं है। कुछ समझ में आ रहा था तो बस नियति का घूमता चक्र जिसके आगे कोई कुछ नहीं है।

तुलसी का एक पद

डॉ. कुलभूषण शर्मा

हिन्दी साहित्य की अजस्र धारा में राम भक्ति की मंदाकिनी प्रवाहित करने वाले लोक कवि गोस्वामी तुलसीदास का अन्यतम स्थान है। उन्होंने राम कथा को आधार बनाकर अपने समकालीन समाज का मार्गदर्शन किया तथा एक ऐसे भविष्य का मार्ग प्रशस्त किया जिससे युगों–युगों तक जनमानस प्रेरित होता रहेगा। गोस्वामी द्वारा बारह रचनाएँ लिखी गई जिसमें राम कथा के माध्यम से जीवन दर्शन की ही व्याख्या की गई है। उनके समस्त चिंतन का समाहार यदि 'रामचरितमानस' में है तो वहीं दूसरी और भक्ति, शील, शक्ति, सौंदर्य आदि के साथ–साथ दीनता, समर्पण का भाव 'विनयपत्रिका' में है। यह एक ऐसी कृति है जिसमें भक्ति भाव धारा के साथ–साथ तुलसी का समकालीन समाज, वहाँ की व्यवस्था, भक्ति की दीनता, दर्शन की विद्वता और दास का समर्पण का भाव एक साथ समन्वित रूप में दिखलाई देता है।

तुलसी भक्त कवि हैं। उनके अनुसार भक्ति में भाव और श्रद्धा तो अनिवार्य है ही किन्तु साथ–साथ मन पर नियंत्रण और मोह–माया से मुक्ति भी अनिवार्य है तभी हम सभी जीवन का पूर्ण आनंद लें सही मार्ग पर चल सकेंगें। इसलिए तुलसी ने 'विनयपत्रिका' एक स्थल पर लिखा है–

माधव। मोह–फाँस क्यों टूटैं।

बाहर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै।

धृत पूरन कराह अतंरगत, ससि प्रतिबिम्ब दिखावैं।

ईंधन अनल लगाय कलपतसत, औरल नास न पावैं।

तरु–कोटर मँह बस बिंहग तरु काटे मेंरे न जैसे।

माधव करिय विचार–हीन मन सुद्ध होइ नहि तैसे।

अन्तर मालिन, विषय मन अति, तन पावन करिय पखारे।

मरइ न उंरग अनेक जतन बलमीकि बिबिध बिधिमारे।

तुलसीदास हरि गुरु कसना बिनु, विमल बिबेक न होई।

बिन बिबेक संसार घोर निधि, पार न पावै कोई।।

(विनयपत्रिका, छंद 115)

अर्थात् तुलसी इस पद के माध्यम से बताते हैं कि यह मोह की फाँसी इतनी सरलता और सहजता से नहीं टूट सकती। चाहे हम कितने भी बाहरी साधन जप–तप आदि कर लें बिना अंतकरण को शुद्ध किए जीव बंधन मुक्त नहीं हो सकता। घी से परिपूर्ण कड़ाई में जिस प्रकार चन्द्रमा की परछाई रहती है चाहे कितने प्रकार के ईंधन और आग से जलाकर प्रयास कर लें। लेकिन जब तक घी का लेश मात्र भी रहेगा। तब तक चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखेगा ही। उसी प्रकार जब तक मोह का लेश मात्र रहेगा तब तक माया की भेद बुद्धि रहेगी ही। तुलसी आगे वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार किसी वृक्ष के घोंसले में रहने वाला पक्षी पेड़ के काटे जाने के बाद भी मरता नहीं है बल्कि वह दूसरा सहारा ढूँढ लेता है। ठीक उसी प्रकार यह मन रूपी पक्षी माया के एक अंग या शरीर वृक्ष के कट जाने के बाद मरता नहीं है बल्कि सूक्ष्म रूप में अन्य किसी भाव का वृक्ष का सहारा ढूँढ लेता है। मन को मारने से नियंत्रित नहीं किया जा सकता। जब तुम उस पक्षी को पकड़ कर पिजड़े में बंद कर दोगें अर्थात् विवेक को अपनाते हुए हरि कथा का हरिशरण में सीापित कर दोगें तो वह सरलता से वंश में आ जाएगा। पिजड़े में बंद पक्षी भी फड़फड़ाता रहता हैं लेकिन धीरे–धीरे वह एक स्थान पर नियंत्रित हो जाता है। ठीक उसी प्रकार हरि शरण में आने पर भी मन में कई प्रकार के मोह या विषय–बालकायैं हमें भटकाती रहती है। लेकिन संपूर्ण समर्पण के द्वारा धीरे–धीरे भक्ति भाव में मन नियंत्रित हो जाता है। एक अन्य उदाहरण द्वारा तुलसी बताते हैं कि जैसे बॉबी पर अनेक प्रहार करने के बाद भी ओर विविध प्रयास करने पर भी भीतर रहने वाला सर्प मरता नहीं है। ठीक उसी प्रकार धो धोकर स्वच्छ रखने से या केवल नियम निभा लेने मात्र से मन पवित्र नहीं हो सकता। इसलिए अंत में तुलसी भगवान की कृपा और गुरु के मार्ग अनुपालन ही महत्वपूर्ण मानते हैं। गुरु के मार्गदर्शन और ईश्वर कृपा से हममें विवेक पैदा होता है और विवेक से ही मन को नियंत्रित कर अपने जीवन का कल्याण कर सकते है। इस प्रकार तुलसी इस पद के द्वारा जहाँ एक मोह जप–तप की अपेक्षा मन पर नियंत्रण की बात करते है वहीं दूसरी और गुरु की महत्ता उनके वयन का जीवन में अनुपालन की व्याख्या करते है। आज के समाज में विखराव इसी कारण है कि आज न गुरु आदेश रूप में हैं और न ही शिष्य कुछ अर्जित करना चाहते हैं इसलिए प्रतियोगिता के युग में भौतिक साधनों को प्राप्त करने के बाद भी भक्ति, दीनता, विनम्रता और विवेक के अभाव में अकेंले हो त्रासद जीवन जी रहें है। ऐसे में हमें तुलसी, कबीर, सूरदास आदि कवियों के चिंतन और साहित्य को पढ़ने की आवश्यकता हैं। जिससे हम अपने जीवन में एक सकारात्मक परिवर्तन ला सकें।

छात्राओं की क़लम से

वक्त नहीं है

हर खुशी है लोगों के दामन में,पर एक हंसी के लिए वक्त नहीं

दिन रात दौड़ती दुनिया में,ज़िंदगी के लिए वक्त नहीं

सारे रिश्तों को तो हम मार चुके हैं, अब उन्हें दफनाने का भी वक्त नहीं

सारे नाम मोबाइल में हैं, पर दोस्त के लिए वक्त नहीं

ग़ैरों के लिए क्या बात करें, जब अपनों के लिए ही वक्त नहीं

आंखों में है नींद भरी पर सोने के लिए तो वक्त नहीं

दिल है ग़मों से भरा हुआ, पर रोने के लिए तो वक्त नहीं

पैसों की दौड़ में ऐसे दौड़े कि थकने का भी वक्त नहीं

पराए एहसानों की क्या कद्र करें, जब अपने सपनों के लिए ही वक्त नहीं

जन्नत

द्वितीय वर्ष

घर में आंगन में भर गया आख़िर

पानी सर से गुज़र गया आख़िर

ज़िंदगी भी अजीब शै है सलिल

मिली जिसको, वो मर गया आख़िर

—कुलदीप सलिल

कॉलेज की यादें

2013 की बात है, मैंने अपने पड़ोस में एक दीदी से ऐसे ही पूछ लिया कि आप कौन से कॉलेज में पढ़ती हो? उन्होंने जो नाम बताया था वो मैं तुरंत ही भूल गई थी क्योंकि वो थोड़ा लंबा था। और वो लंबा नाम था– श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला महाविद्यालय। मुझे याद है कि मैंने हंसकर कहा था कि कितना बड़ा नाम है आपके कॉलेज का। मैं तो हंसराज या मिरांडा हाउस में पढूंगी क्योंकि मेरी स्कूल की मैडम और क्लास टीचर भी इन्हीं कॉलेजों की पढ़ी हुई हैं और वो बताती रहती हैं कि उनके कॉलेज कितने अच्छे हैं। लेकिन देखिए न कि जिस कॉलेज का नाम सुनते ही मैं चौंक गई थी, उसी कॉलेज में मेरा एडमिशन हुआ और उसी में मैंने तीन साल अपनी पढ़ाई की।

पहली कट ऑफ लिस्ट के आख़िरी दिन यूं ही अखबार में दोबारा लिस्ट देख रही थी हालांकि मैं लिस्ट पहले देख चुकी थी। मुझे असल में ज्योग्रफी ऑनर्स करना था पर पहली लिस्ट में मेरा नंबर नहीं आया था। पर देखिए न उस वक्त दिमाग़ ऐसा फिरा कि मैंने मम्मी से कहा कि जल्दी से तैयार हो जाओ, आपको मेरे साथ कॉलेज जाना है। मुझे हिंदी ऑनर्स करना है और आज एडमिशन का आख़िरी दिन है। उस समय तक 12 बज चुके थे। मैंने फटाफट क्लास टीचर को कॉल कर उनसे बात की और उनकी भी सहमति के साथ कॉलेज पहुंच गई। मुझे याद है कि उस दिन शाम के 6 बज गए थे, पर एडमिशन हो गया था। और देखिए न दिमाग़ की फितरत एडमिशन कराने के लिए जहां इतनी परेशान हो रही थी, वहीं एडमिशन के बाद लग रहा था कि ये तीन साल कैसे कटेंगे!

धीरे–धीरे कॉलेज आने की प्रक्रिया शुरू हुई। पहले पापा के साथ कॉलेज आती थी और फिर मैंने बस से आना शुरू कर दिया। उस बस की कहानी भी सबसे अलग है। बैठो कहीं के लिए और पहुंचो कहीं। पर धीरे–धीरे यह भी समस्या भी दूर हो गई क्योंकि कॉलेज का रास्ता याद होने लगा था। उस बस में भी मेरी कई सारी सहेलियां बनीं। कॉलेज के तीन वर्ष बीत जाने के बाद ये सब कुछ बहुत याद आता है। हमारा हिंदी विभाग भी बहुत अच्छा था बल्कि जितनी तारीफ की जाए उतनी ही कम होगी। हमारे विभाग की वरिष्ठ प्राध्यापिकाएं देवकी मैम, वसुंधरा मैम, पूनम मैम सबने मिलकर विभाग में ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन किया कि क्या कहें! इन कार्यक्रमों में अनामिका जी, ज़किया ज़ुबैरी, तेजेन्द्र शर्मा, मारिया नेज्येशी और बहुत सारे हिंदी के साहित्यकारों से हमारा परिचय हुआ, जिसे कोई भी नहीं भूल सकता क्योंकि इन सब कार्यक्रमों से हमें हिंदी के विश्वस्तरीय रूप का ज्ञान हुआ। बस इतना ही नहीं। बहुत से और भी कार्यक्रम आयोजित किए गए जिनमें बुनोकथा, साहित्यिक प्रश्नोत्तरी और इसके अलावा राम पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का भी भव्य आयोजन किया गया जिसके माध्यम से हमें हरि अनंत हरि कथा अनंता का वास्तविक अर्थ समझ में आया।

हमारी क्लास के बच्चों का भी क्या कहना! पूरी क्लास आपस में बहुत अच्छी दोस्त थी। सभी अव्वल दरज़े के जो हम सारे अपनी टी–शर्ट पर बता ही चुके हैं।

अब आख़िर में एक बात याद आ रही है। जब स्कूल में थे तो टीचर कहती थीं कि जब कॉलेज जाओगे तो पता चलेगा। कॉलेज में आए तो शिवानी मैम बोलती थीं कि लड़कियों यहीं मज़े कर लो जब एम ए में जाओगी तब पता चलेगा। सोचती हूं कि अब आगे की राह क्या होगी?

करुणा तृतीय वर्ष

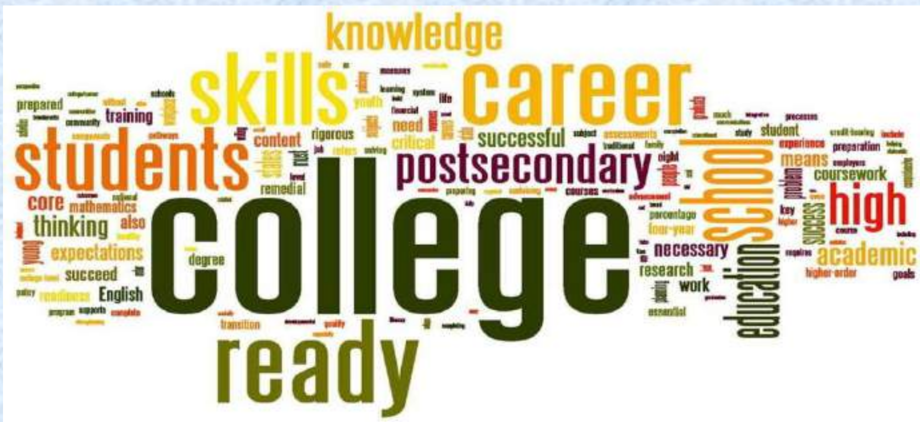

कश्मीरी लोककथा

एक आदमी अखरोट के पेड़ के नीचे बैठा था। पेड़ के पास कद्दू की एक बेल थी। बेल के एक बहुत बड़े कद्दू पर उसकी नज़र पड़ी। उस आदमी ने हंसते हुए कहा कि भगवान तुम्हारी मूर्खता का भी जवाब नहीं। इतने बड़े पेड़ पर इतना छोटा सा फल और इस ज़रा सी बेल पर इतना बड़ा फल! अगर इस विशाल पेड़ पर कद्दू लगते और इस बेल पर अखरोट तो मैं तुम्हारी बुद्धिमानी को मान जाता। उसका यह कहना ही था कि एक अखरोट टप्प से उसके सिर पर गिरा। वह चौंक पड़ा। बोला– प्रभु तुम्हीं ठीक हो। अगर इस छोटे फल की जगह कद्दू मेरे सिर पर गिरा होता तो मैं तो मर ही गया होता। तुम्हारी बुद्धि और दया अपार है।

मैं एक काल्पनिक कहानी लिखने की सोच रही थी। फिर पता नहीं क्यों मुझे लगा कि काल्पनिक कहानी से क्या होगा। क्यों न मैं अपने समाज की सच्चाई को उजागर करती हुई कुछ रचना करूं। हमारा भारत जो ब्रिटिश सरकार के अधीन था, वह 15 अगस्त 1947 को आज़ाद हुआ। आज हमें आज़ाद हुए लगभग 70 वर्ष हो चुके हैं। फिर भी हमारा भारत विकसित नहीं हुआ है और अब भी विकासशील देशों की श्रेणी में ही खड़ा है। आख़िर ऐसा क्यों है? आज हमारा देश एक ओर चांद पर पहुंच रहा है। बेटों के साथ बेटियां भी उन्नति कर रही हैं। ऑस्ट्रेलिया के गोल्ड कोस्ट में हो रहे 21 वे कॉमनवेल्थ गेम्स में भारत के बेटों ने ही नहीं बेटियों ने भी अपना कमाल दिखाया। पंजाब की नवजोत एशियन कुश्ती चैंपियनशिप में गोल्ड जीतने वाली पहली महिला बनीं। वहीं मनु भाकर भारत की सबसे युवा महिला शूटर बनीं। नाम और भी बहुत से हैं। लेकिन इतना सब होने के बाद भी हमारे समाज में महिलाओं की स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं है। मोदी जी कहते हैं कि बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ। इस तरह के नारे की आवश्यकता ही महिलाओं की स्थिति को उजागर कर देती है।

समाज में कुछ विकृत मानसिकता के लोग अब भी महिलाओं को यौनिक वस्तु से अधिक नहीं मानते। महिलाओं की तो बात ही क्या है 6–8 माह की अबोध बच्चियों तक को नहीं बख़्शा जा रहा है। कुकर्म करने के बाद उनकी हत्या तक कर दी जाती है। ऐसे ही एक मामले में यह बात सामने आई कि बलात्कार अल्पसंख्यक समुदाय को समाप्त करने के लिए किया गया। कितने शर्म की बात है कि जहां एक ओर हम पूरे भारत में भारत रत्न डॉ अंबेडकर की 127 वीं जयंती मना रहे हैं, वहीं अल्पसंख्यकों को हटाने और उन्हें कमज़ोर करने के लिए बलात्कार को हथियार की तरह प्रयोग किया जा रहा है। मैं रोज़ जब अखबार खोलती हूं तो इस तरह की ख़बरें मेरा दिल तोड़ती हैं। संबंधों को तार–तार करती ख़बरें भाई–बहन के रिश्तों को तोड़ती, पिता और पुत्री के संबंधों को कलंकित करतीं घटनाएं समाज से विरक्त करने के लिए काफी हैं।

पूजा साहनी

बेटियां

ओस की एक बूंद सी होती हैं बेटियां
खुरदरा सा स्पर्श हो तो रो देती हैं बेटियां
रौशन करेगा बेटा बस एक वंश को
दो–दो वंशों को रौशन करती हैं बेटियां
कांटों भरी राह पर सदा चलती हैं बेटियां
पर औरों के लिए फूल ही बिछाती हैं बेटियां
बेटे हैं अगर हीरे तो मोती होती हैं बेटियां
धिक्कार है उन्हें जिन्हें बुरी लगती हैं बेटियां
सबके लिए प्यार ही प्यार संजोती हैं बेटियां

जन्नत
द्वितीय वर्ष

बोध कथा

एक बार भगवान बुद्ध से उनके शिष्य आनंद ने पूछा– भगवन् जब आप प्रवचन देते हैं तो सुनने वाले नीचे बैठते हैं और आप उच्च आसन पर बैठते हैं, ऐसा क्यों? भगवान बुद्ध बोले– ये बताओ कि पानी झरने के किस ओर खड़े होकर पिया जाता है? आनंद ने उत्तर दिया–झरने के नीचे ही खड़े होकर पिया जा सकता है। भगवान बुद्ध ने कहा– तो फिर यदि प्यासे को संतुष्ट करना है तो झरने को उच्च से निम्न की ओर ही बहना होगा न? आनंद ने हां में उत्तर दिया। यह सुनकर भगवान बुद्ध बोले– आनंद, ठीक इसी तरह यदि तुम्हें किसी से कुछ प्राप्त करना है तो स्वयं को नीचे लाकर ही प्राप्त कर सकते हो और तुम्हें उच्चता के लिए तैयार करने हेतु दाता को स्वयं उच्च स्थान प्राप्त करना ही होगा। इस सहज–सौहार्द्रपूर्ण समन्वय से ही तुम एक ऐसे सागर में बदल जाओगे जो ज्ञान की अजस्र धाराओं का केंद्र होगा।

प्रेरणा

कॉलेज की पहली कक्षा में लेट पहुंचने पर मुझे मैम ने डांटा और कहा आगे से टाईम पर आना। तभी से मैंने कॉलेज समय से पहुंचने की कोशिश की। पर ये कोशिश इसलिए नहीं थी कि मैं उपस्थिति के नंबर प्राप्त कर सकूं बल्कि इसलिए थी कि मैं कुछ ऐसा प्राप्त कर सकूं जिससे मैं अब तक बेखबर हूं।

जाने अनजाने ही सही कॉलेज का सफर मेरे लिए सुहावना रहा। कॉलेज से बहुत कुछ सीखने को मिला। मैंने कोशिश की अपनी टीचर्स की गहरी बातों को समझने की और देखते ही देखते वो मेरी आदर्श बन गईं। उनके पढ़ाने से और उनके व्यक्तित्व से मैं उनके प्रति आकर्षित होती गई। उन्होंने मेरे अंदर नए तरह से सोचने की उम्मीद जगाई जो अभी तक बरक़रार है। इस कार्य को आज तक कोई और नहीं कर पाया था जो उन्होंने किया।

मैंने कॉलेज की पहली कक्षा से उनको अपना आदर्श बनाया और आगे भी उनकी प्रेरणा मुझे रास्ता दिखाती रहेगी। यह मैं जानती हूं। मुझे अंदर ही अंदर ऐसा भी लगता है जैसे उनसे मेरा कोई पुराना रिश्ता है। जब मेरी ज़िंदगी का अगला पड़ाव मेरे सामने आया तब मैंने उनको याद किया और देखिए कि एम ए के एंट्रेंस में जो पहला प्रश्न मुझे स्क्रीन पर मिला, वो उनके विषय से ही मिला। मुझे महसूस हुआ कि मुझे उनका आशीर्वाद मिल गया। मेरी परीक्षा भी सफल रही और परिणाम भी अच्छा रहा।

शिवानी

तृतीय वर्ष

मां

नींद बहुत आती है पढ़ते–पढ़ते

मां होतीं तो कह देती कि एक कप चाय बना दो मां

थक गई जली रोटी खा–खाकर,

मां होतीं तो कह देती परांठे बना दो न मां

भीग गईं आंसुओं से आंखें मेरी

मां होतीं तो कह देती अपना आंचल देदो मां

रोज़ वही नाक़ाम सी कोशिश ख़ुश रहने की करती हूं

मां तुम होतीं तो ग़म में भी मुस्कुरा लेती मैं मां

देर रात हो जाती है घर पहुंचते–पहुंचते

मां होतीं तो वक्त से घर मैं लौट आती मां

सुना है कई दिनों से वो भी नहीं मुस्कुराईं

ये मजबूरियां न होतीं तो पास तुम्हारे अपने घर चली आती मैं मां

बहुत दूर निकल आई हूं घर से अपने

अगर तेरे सपनों की परवाह न होती तो

तेरे पास अपने घर ही लौट आती मां

शिवानी

तृतीय वर्ष

आंखों का पानी

आंखों का पानी कहूं या कहूं बरसते बादल
जो कभी भागे चुराकर दिल की बातें,
या कभी उतरे फलक से,
छलकाने अपनी यादें,
अजीब ही दस्तूर है इनका
दिलों की चोट को
छुपाते अल्फाज़ हैं
बयां कर देता आंखों का पानी
रुख्सत होकर डोली में
आशियां सजाती वह जहां
अपना ही अक्स अर्पित कर
आरजुओं की हत्या करती वहां
फिर वहीं बहता देखा
दहेज में झुलसता पानी
सुलग रही है धरती आज
बहती ठंडी हवाओं से
भ्रष्ट वेगों से
तसव्वुर ऐ दीदारों से
अपने ही अस्तित्व से
बुझाने को इसकी प्यास

बेचैन होकर निकलते देखा

आंखों का पानी

खेतों में, खलिहानों में, गुले–गुलज़ारों पर

पहली किरण से आते देखा

आंखों का पानी

सांझ की बौछारों में मोतियों के थाल में

बैठा था एक दरबान

उसकी लौ से गुज़रते देखा

आंखों का पानी।

कभी रोता फ़लक देखा, कभी देखी हंसती आंखें

ख़ुशी में, ग़म में आते देखा

दिल का राज़ चुराते देखा

जिन नैनों को सांझ ख़्वाब सजाते देखा

उन्हीं को आज बिछड़ते देखा।

क्यों भर आता आंखों में पानी

जब याद आती कोई व्यथा पुरानी, खुशी में भी नयनों को भीगे देखा

क्यों सच हो जाती वो बात पुरानी

जो सुनी थी हमने–तुमने बड़ों की ज़ुबानी

कोई साथ छोड़ चाहे न साथ न छोड़ेगा कभी

आंखों का पानी। आंखों का पानी

शिवांगी गुप्ता तृतीय वर्ष

तस्वीरों में हिंदी विभाग

प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय
हिन्दी विभाग द्वारा आयोजित
सूचना तन्त्र)